अंग्रेज़ी राज से पहले पंजाब में शिक्षा

शंकर शरण*

भारत पर राजनीतिक नियंत्रण कायम कर लेने के बाद ब्रिटिश सरकार ने यहाँ की सामाजिक व्यवस्था को गहराई से समझने का यत्न किया। भारतीय शिक्षा को समझने के लिए उन्होंने कई आयोग बनाए, जिन्होंने भारत में चल रही शिक्षा प्रणाली का सविस्तार अध्ययन और आकलन किया। प्रस्तुत लेख उन्हीं में से एक आयोग की रिपोर्ट पर आधारित है। इससे ब्रिटिश पूर्व भारत की शिक्षा प्रणाली और उसकी विशेषताओं की एक झलक मिलती है। साथ ही, भारतीय और यूरोपीय शिक्षा की तत्कालीन स्थिति की भी कुछ तुलनात्मक जानकारी मिलती है। प्रतीत होता है कि पुरानी भारतीय शिक्षा में बहुतेरी बातें ऐसी थीं जिन्हें पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। वह जन-जन की भौतिक, मानसिक और चारित्रिक आवश्यकताओं को पूरा करती थी। अंग्रेज़ों द्वारा चलाई गई शिक्षा में कई तत्वों का अभाव है, जिसकी हानियाँ महसूस की जा रही हैं। इस लेख से उन बिंदुओं पर भी सोचने की सामग्री मिलती है।

भारतीय शिक्षा के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से 'लीटनर रिपोर्ट' एक प्रसिद्ध दस्तावेज़ है। इसे डॉ. जी. डब्ल्यू. लीटनर ने तैयार किया था। यह रिपोर्ट पहली बार सन् 1883 में प्रकाशित हुई थी।[1] प्राच्य विद्या के विद्वान और बैरिस्टर डॉ. लीटनर पहले किंग्स कॉलेज, लंदन में अरबी भाषा एवं मुहम्मदी कानून के प्रोफ़ेसर रह चुके थे। फिर ब्रिटिश भारत सरकार की विशेष सेवा में शिक्षा आयोग के साथ नियुक्त होकर उन्होंने यह रिपोर्ट तैयार की। बड़े पन्नों और महीन प्रिंट में लगभग साढ़े पाँच सौ पन्नों की यह रिपोर्ट एक बहुमूल्य दस्तावेज़ है। इसमें सन् 1849 से 1882 के बीच पंजाब में शिक्षा की स्थिति पर अद्‌भुत जानकारियाँ मिलती हैं।

वस्तुतः इसमें भारत के बहुत बड़े हिस्से की जानकारी है, क्योंकि तब का पंजाब पूरब में आज के उत्तर प्रदेश की सीमा से लेकर पश्चिम में ईरान तक तथा दक्षिण में राजस्थान सीमा से लेकर उत्तर में तिब्बत एवं लगभग रूस को भी छूता था। अर्थात् आज के पाकिस्तान का लगभग पूरा हिस्सा तथा वर्तमान भारतीय पंजाब के साथ-साथ हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा दिल्ली-यह संपूर्ण

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, समाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

इलाका पंजाब था। जब 1849 में अंगेज़ों ने इस पर कब्ज़ा किया था तब उन्होंने प्रशासनिक दृष्टि से पंजाब को 10 डिवीज़न[2] और 32 जिलों में तथा कुल 360 थानों में बाँटा था।

उस समय, सन् 1882 में इस संपूर्ण इलाके के प्रत्येक थाने के गाँव-गाँव में विभिन्न तरह के पारंपरिक विद्यालय (पाठशाला, वैश्यशाला, मदरसा, मकतब तथा गुरुमुखी विद्यालय) थे, उन सबमें कितने विद्यार्थी, कितने शिक्षक, उनमें क्या-क्या पढ़ाया जाता था? प्रमुख पाठ्यपुस्तकों के नाम, शिक्षकों को प्राप्त होने वाली आय, शिक्षकों की योग्यता और अकादमिक उपलब्धियाँ, शिक्षा का माध्यम और लिपि, यहाँ तक की उन लिपियों के नमूने तथा पाठ्यपुस्तकों में दिए गए पाठ के उदाहरण तक इस रिपोर्ट में दर्ज़ हैं। अर्थात् वह शिक्षा जो अंग्रेज़ों के कब्ज़े से पहले पंजाब में चल रही थी और अंग्रेज़ी राज के कारण कमज़ोर हो रही थी। जिस परिश्रम और निष्ठा से विद्वान लीटनर ने यह रिपोर्ट कठिन परिस्थितियों और खराब स्वास्थ्य के साथ बहुत कम समय में, अल्प साधनों से तैयार की- वह आज किसी भी आधुनिक शोधकर्ता को लजा सकता है। यह दिखाता है कि शोध के लिए, बल्कि किसी भी सामाजिक कार्य के लिए साधनों से अधिक भावना और निष्ठा की आवश्यकता होती है।

प्राच्य विद्याविद् होने के कारण लीटनर यह पहले से जानते थे कि शिक्षा के प्रति विशेष आदर पूरब के लोगों की एक पहचान रही है। इसलिए उन्होंने बड़ी गंभीरता और सावधानीपूर्वक सारी जानकारियाँ इकट्ठा करने की कोशिश की। चूँकि यूरोपियनों ने भारतीयों को युद्ध में हराकर ऐसे इलाकों पर अधिकार किया था, इसलिए उन मेमों से बहुतों को यह सरसरी गलतफ़हमी भी रहती थी कि यूरोपियन हर बात में, यहाँ तक कि राजनीतिक व्यवस्था, धर्म दर्शन, ज्ञान शिक्षा आदि में भी भारतीयों से श्रेष्ठ हैं। लीटनर इस दंभ से मुक्त थे। पूरबी ज्ञान के प्रोफ़ेसर रहे होने के कारण उन्हें कई मामलों में पूरब के लोगों की विशिष्ट क्षमता और उपलब्धियों का अंदाज़ा था। इसलिए शिक्षा की स्थिति का आकलन करते हुए उन्होंने अधिक से अधिक वास्तविक जानकारियाँ हासिल करने की कोशिश की। किसी पूर्व-धारणा से ग्रस्त होकर पंजाब की देसी शिक्षा व्यवस्था पर जैसे-तैसे कोई रिपोर्ट नहीं लिखी। इसलिए यह एक बहुमूल्य दस्तावेज़ है।

इस रिपोर्ट का संदर्भ यह था कि पंजाब पर कब्ज़े के बाद नयी अंग्रेज़ी सरकार ने एक शिक्षा विभाग बनाया। यूरोपीय शैली का एक कॉलेज खोला तथा एक विश्वविद्यालय बनाया। इन उच्चशिक्षा संस्थानों को उपयुक्त शिक्षार्थी मिलें, इसके लिए प्रत्येक जिले में एक जिला स्कूल खोला। इस बीच सरकार ने एक नया टैक्स लगाया 'विलेज एजुकेशन सेस', जिसके साथ घोषणा की गई कि इस धन से हरेक गाँव में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी तथा जहाँ पहले से विद्यालय चल रहे हैं, उन्हें आर्थिक सहायता दी जाएगी। मगर नए खुले शिक्षा विभाग के अंग्रेज़ अधिकारियों को पंजाब में पहले से चल रहे विद्यालयों से प्रतिद्वंद्विता महसूस होती थी। साथ में यह स्वार्थ भी था कि शिक्षा के मद का धन उन देसी विद्यालयों को न जाए और केवल नए शासकीय स्कूलों को ही उनका लाभ मिले। फिर यह अहंकार तो था ही कि उन देसी विद्यालयों की शिक्षा नए खुले यूरोपियन मॉडल वाले स्कूलों

के सामने हीन होगी। इसलिए उन की क्या परवाह करना! इसलिए नया शिक्षा विभाग दो दशक बीत जाने पर भी अपनी सरकार को पंजाब के देसी विद्यालयों का विवरण न दे सका। तब सरकार ने नया शिक्षा आयोग बनाकर प्रो. लीटनर को यह कार्य सौंपा कि वे सारा विवरण न जल्द इकट्ठा कर सरकार को दें, ताकि 'विलेज एजुकेशन सेस' के साथ किया गया वादा पूरा किया जाए और गाँव- गाँव के पारंपरिक विद्यालयों को सहायता दी जाए।

मगर काम शुरू करने पर लीटनर ने अनेक तरह की कठिनाइयाँ पाईं। सबसे पहले तो यही कि प्राय: सभी इलाकों में पारंपरिक विद्यालय यह चाहते ही नहीं थे कि सरकार उन्हें कोई 'सहयोग' दे। पाठशालाएँ, मदरसे, मकतब, वैश्य-शालाएँ और गुरुमुखी विद्यालय पंजाब के गाँव-गाँव में स्वयं संचालित थे। उन्हें विदेशी शासन के हस्तक्षेप से बचने की इच्छा थी, क्योंकि उनके विद्यालय पारंपरिक रूप से स्वयं अच्छी तरह चल रहे थे। वे योग्य शिक्षकों द्वारा स्थानीय लोगों की रुचि और आवश्यकता के अनुसार सफलतापूर्वक चल रहे थे। उन शिक्षा संस्थानों का संचालन तथा निदेशन प्राय: सबसे अग्रणी और सम्मानित लोगों द्वारा होता था। इसलिए जब शासकीय विभाग के कर्मचारी पूछ-ताछ करते तो उन्हें संदेह होता कि इसके पीछे कोई हितकारी भावना नहीं होगी। अत: वे पूरी जानकारी देने से कतराते थे। क्योंकि वे ब्रिटिश हस्तक्षेप से अपने विद्यालयों की रक्षा करना चाहते थे।

दूसरी ओर, शासकीय शिक्षा विभाग के अमले अहंकार, आलस्य और ईर्ष्यावश पारंपरिक विद्यालयों के बारे में पूरी या सही जानकारी इकट्ठा करने में अनिच्छुक थे। उसके बड़े अधिकारी अंग्रेज़ थे, जिनकी अपनी निजी उन्नति शासकीय उर्दू-अंग्रेज़ी स्कूलों की उन्नति से जुड़ी थी। इसलिए लीटनर को अपने निजी परिश्रम तथा विविध श्रोतों से अनेक जानकारियाँ एकत्र करनी पड़ीं। फिर भी उनका अनुमान था कि विद्यालयों, शिक्षकों, विद्यार्थियों की संख्या के बारे में उन्हें पूरी जानकारी नहीं हो पाई। अर्थात्, रिपोर्ट में सन् 1882 के पंजाब में इनकी जो संख्या आई है, वास्तव में उससे अधिक विद्यालय, विद्यार्थी और शिक्षार्थी वहाँ थे। यद्यपि यह बिलकुल साफ़ था कि 1849 की तुलना में उनकी संख्या घटी थी और लगातार घटने की दिशा ही दिख रही थी।

पारंपरिक विद्यालयों की संख्या और गुणवत्ता भी गिरने का एक बड़ा कारण स्वयं वह 'अनुदान' भी था, जो अब नयी ब्रिटिश सरकार ने उन्हें देने की नीति बनाई थी! पहले पूरी तरह स्थानीय समाज द्वारा संचालित होने के कारण शिक्षकों की आय उनकी योग्यता और कार्य की गुणवत्ता पर निर्भर थी। अब शासकीय वेतन की शुरुआत ने शिक्षकों को उस पारंपरिक गुणवत्ता एवं कार्य-आधारित आय से स्वतंत्र करना आरंभ कर दिया। इससे विद्यालयों के संचालन में स्थानीय समाज की भूमिका भी धीरे-धीरे घटने लगी। न केवल धन की व्यवस्था बल्कि शिक्षा के विषय, पाठ्य सामग्री आदि भी दूर बैठे किन्हीं अधिकारियों और विजातीय लोगों द्वारा तय होने लगी। शिक्षा अपने समाज से दूर होकर राज्य-तंत्र से जुड़ने लगी। अपनी सरसता छोड़कर रूखी, यांत्रिक, कागज़ी सर्टिफिकेट वाली प्राणहीन शिक्षा की ओर बढ़ने लगी। इस तरह, वह 'सुंदर वृक्ष'[3] उजड़ने लगा, जिसके रूपक से गांधीजी ने भारतीय शिक्षा को

अंग्रेज़ी के हाथों नष्ट होने का सही आरोप लगाया था। लीटनर की यह रिपोर्ट इसकी प्रमाणिक, चित्र-लिखित झलक देती है।

लीटनर के अनुसार, भारतीय समाज में शिक्षा का आदर इतना अधिक था कि हर तरह के लोग, दुष्ट प्रधान से लेकर लोभी महाजन, यहाँ तक कि युद्ध-लुटेरे तक विद्वानों का आदर करने में बढ़-चढ़ कर प्रतियोगिता करते थे। इससे उन्हें आत्मिक सुख होता था। ऐसा कोई मंदिर, मस्ज़िद और धर्मशाला न था जिसके साथ कोई स्कूल जुड़ा हुआ न हो। वहाँ बच्चे और युवा खुशी-खुशी पढ़ने जाते थे। वे स्कूल मुख्यत: धार्मिक शिक्षा देते थे। किंतु हज़ारों सेक्यूलर स्कूल भी थे, जिसमें मुसलमान, हिंदु और सिख समान रूप से पढ़ने जाते थे। उन स्कूलों में फ़ारसी और लुंद (Lunde) लिपि की पढ़ाई होती थी। फिर, ऐसा कोई धनी न था जो निजी रूप से किसी न किसी मौलवी, पंडित या गुरु को अपने यहाँ नियुक्त न रखता हो जो उसके बच्चों के साथ-साथ पास-पड़ोस और उसके मित्रों, संबंधियों के बच्चों को भी पढ़ाते थे। इसके अलावा सैकड़ों विद्वान भी स्वेच्छा से समाज सेवा के रूप में भगवान का कार्य, 'लिल्लाह' समझ कर विद्यादान करते थे। साथ ही गाँव का कोई आदमी ऐसा न था जो खुशी-खुशी अपनी आय का कोई हिस्सा किसी सम्मानित शिक्षक को देकर गर्व न महसूस करता हो।

सन् 1849 में, जब अंग्रेज़ों ने वहाँ कब्ज़ा किया, पंजाब में कम से कम 3 लाख 30 हज़ार विद्यार्थी देशी शिक्षा और उच्च शिक्षा संस्थानों में थे। वह संख्या 1882 में घटकर 1 लाख 90 हज़ार रह गई। वे विद्यार्थी पढ़ना, लिखना तथा किसी न किसी क्षमता तक गणित जानते थे। उनमें हज़ारों विद्यार्थी अरबी और संस्कृत महाविद्यालयों से जुड़े थे, जहाँ पूरबी साहित्य, कानून, दर्शन, तर्कशास्त्र और आयुर्वेद की पढ़ाई होती थी। उन संस्थाओं के दसियों हज़ार विद्यार्थी फ़ारसी में इतने प्रवीण थे जो शासकीय और शासकीय सहायताप्राप्त स्कूल, कॉलेजों में दुर्लभ थी। उन देशी शिक्षा संस्थाओं में एक निष्ठा का वातावरण था जो किसी सांसारिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि ज्ञान प्राप्ति मात्र, चरित्र निमार्ण और सुसंस्कृत, धर्मनिष्ठ होने के लिए थी। बनियों के लड़के भी अपने साधारण पांढा (शिक्षक) को अत्यंत आदर से देखते थे, जो उन्हें बस वह मामूली शिक्षा 'टू आरस्' (two 'r's) के तत्व भर दे पाता था जो बनिये लड़कों की जीविका के लिए बिलकुल ज़रूरी होती थी।

सन् 1874 में एक ब्रिटिश पार्लियामेंटरी रिपोर्ट (1874, C. 1072 II, Part III) ने भी पंजाब में देशी शिक्षा की स्थिति का आकलन किया था। डॉ. लीटनर ने इसे भी विस्तार से उद्धृत किया है। इसके अनुसार, पंजाब में मुसलमानों और हिंदुओं के लिए बड़ी संख्या में धार्मिक विद्यालय थे। इनमें पढ़ने वाले मुख्यत: पुरोहित वर्ग के लोग थे, जिनमें कई बड़े प्राच्य-विद्याविद् माने जाते थे। इनमें मुख्यत: व्याकरण, धार्मिक साहित्य और शास्त्रीय भाषाएँ, अरबी और संस्कृत पढ़ाई जाती थी। कई विद्यालयों में फ़ारसी, कलात्मक लेखन (कैलीग्राफी) तथा विशिष्ट वाणिज्यिक लिपि पढ़ाई जाती थी, जो केवल बनिये ही जानते-समझते थे। उन स्कूलों में अनुशासन, उन नियमित उपस्थिति आदि के नियम कड़े नहीं थे। पार्लियामेंटरी रिपोर्ट के अनुसार, उन विद्यालयों की लोकप्रियता और उपयोगिता के मद्देनजर शासकीय

नियमों के अनुसार वे अनुदान पाने के दायरे में आते थे, किंतु तब तक व्यवहारतः केवल ईसाई मिशनरी स्कूलों को ही यह मिल रहा था।

अंग्रेज़ी शासन ने यह सब बदल डाला। पंजाब पर ब्रिटिश कब्ज़े के बाद आम लोग चिंतित हो उठे। उनके पास जो कुछ मूल्यवान था उसे आक्रामक विदेशियों से बचाकर, अलग, दूर रखने की भावना पैदा हुई। लीटनर के अनुसार, यदि ब्रिटेन पर भी किसी पर कब्ज़ा किया होता, तो वहाँ के सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज़ लोग भी यही करते! पंजाब पर कब्ज़े के बाद आरंभिक अंग्रेज़ अधिकारियों ने पंजाब के विजातीय वातावरण में कटिबद्ध होकर वे सुधार लागू करने शुरू कर दिए जो यूरोप में भी कुछ खास अच्छे परिणाम नहीं दे सके। अर्थात् उन सुधारों से पंजाब के सहज विकास को मदद नहीं मिली। वह क्षेत्र पहले ही सभ्यतागत उन्नति की जिस अवस्था में था, उससे आगे बढ़ने की दृष्टि से कुछ नहीं हो सका। लेकिन अंग्रेज़ अधिकारी सन् 1857 के विद्रोह से सावधान और सशंकित थे। इसलिए भी उन्होंने पूरी दृढ़ता से अपनी नयी व्यवस्था कायम करने की कोशिशें कीं। इसमें परिणाम की दृष्टि से चाहे समय ही नष्ट हुआ, किंतु अपनी दृढ़ता से उन्हें एक प्रतिष्ठा ज़रूर मिली। यही सरकार है, लोग ऐसा सहजता से मानने लगे।

इस बीच, नये अधिकारी वर्ग को शासितों के बीच गरज़मंद लोगों ने भी घेर लिया। उनमें अनेक उत्तर-पश्चिम प्रांत के महत्वाकांक्षी, ज़ोखिम-पसंद लोग थे। उन लोगों की फ़ारसी-उर्दू की जानकारी से अंग्रेज़ अधिकारियों ने वह बोली सीखी और इससे शासन चलाने में सुविधा होने लगी। साथ ही उन लोगों ने अंग्रेज़ों से टूटी-फूटी अंग्रेज़ी सीख कर सत्ता में एक स्थान बनाना शुरू कर दिया। वे लोग प्रायः समाज के मध्य एवं निम्न वर्गीय तबके के निकृष्ट लोग थे। लेकिन उनका सहयोग लेकर और उन्हें सहयोग देकर अंग्रेज़ों ने अपनी स्थिति मज़बूत की। तभी से शिक्षा में फ़ारसी और संस्कृत के बदले उर्दू का वर्चस्व होने लगा। लेकिन उर्दू में शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी, इसलिए पंजाब में बौद्धिक अंधकार फैलने लगा। किंतु इससे अंग्रजों ने अपने विभिन्न विभागों का काम चलाने के लिए सस्ते मातहत एजेंट पाने का उपाय कर लिया। लीटनर के अनुसार, शिक्षा विभाग कायम करने का एक उद्देश्य यह भी था।

वस्तुतः उर्दू की शिक्षा मुख्यतः यूरोपियनों के लिए थी। लीटनर के अनुसार देशी लोग फ़ारसी और संस्कृत को शिक्षा का विषय व माध्यम मानते थे। उर्दू तो बस फ़ारसी के माध्यम से ऐसे ही उनके पास थी। लीटनर के शब्दों में– ''उर्दू द्वारा फ़ारसी का विस्थापन शिक्षा को बाधित करने वाली बात मानी गयी और भले लोगों की लिखित और मौखिक भाषा के रूप में फ़ारसी चलन से बाहर होने लगी। हालाँकि गरज़मंद और वे जो नये सत्ताधारियों को खुश करना चाहते थे, उन लोगों ने उर्दू और बाद में अंग्रेज़ी का स्वागत किया क्योंकि इससे शासकीय नौकरियों तक पहुँचने का रास्ता बनता था। इस प्रकार हमने पहले शिक्षा का स्तर गिराया, जो पहले मानसिक और नैतिक संस्कृति उन्नत बनाने के लिए होती थी, वह अब महज़ दुनियावी लोभ-लालच वाली महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए होने लगी।'' (*'इंट्रोडक्शन'*, पृ. ii)[4]

अंग्रेज़ों ने मौलवियों, पंडितों तथा ज्ञानियों को संदेह से देखना शुरू किया, जिन्हें समाज में बड़े

आदर से देखा जाता था। डॉ. लीटनर के विचार, अंग्रेज़ों को उन्हें अपने हित के साथ मिलाने की कोशिश करनी चाहिए थी। मगर जल्दबाज़ी में उल्टा किया गया। उन पारंपरिक ज्ञानियों के साहित्य में जो कुछ भी यूरोपियन बद्धि को अटपटा लगता था, उसे मूर्खतापूर्ण समझा गया। चूँकि सत्ताधारी ऐसा कर रहे थे, इसलिए समय के साथ लोगों के बीच उन ज्ञानियों, मौलवियों, पंडितों की प्रतिष्ठा कम होने लगी। ''क्लासिकल भाषाओं (फ़ारसी, संस्कृत) की शिक्षा के बिना देशी भाषाओं का विकास नहीं हो सकता था, मगर अब वे क्लासिकल भाषाएँ केवल कुछ पंडितों, मौलवियों, पुरोहित वर्ग के पास संकुचित होने लगीं। किसी अच्छी सरकार द्वारा सामाजिक भलाई के लिए इनका उपयोग नहीं किया गया।'' (*'इंट्रोडक्शन'*, पृ. ii)

बहरहाल, नये युग के वैज्ञानिक आविष्कारों और सत्ताधारियों की बढ़ती प्रतिष्ठा से लोगों में शिक्षा के प्रति दुविधा की स्थिति रही। फिर सरकार ने 'शिक्षा टैक्स' (एजुकेशन सेस) लगाया और घोषणा की कि जो इलाके यह टैक्स देंगे वहाँ शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। इससे उम्मीदें जगीं, मगर वे पूरी नहीं हुईं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में निराशा और क्षोभ उत्पन्न हुआ। शिक्षा टैक्स के नाम पर पहले 'ग्रामीण शिक्षा टैक्स' (विलेज एजुकेशन सेस) था जो उत्तर-पश्चिमी प्रांतों से आया था। लीटनर कहते हैं कि देशी, भारतीय शासकों ने जनता के साथ जो भी ज़ोर-ज़ुल्म किया हो, उन्होंने यह कभी नहीं किया कि उनकी शिक्षा के नाम पर टैक्स लें, फिर उसे किसी और चीज़ में खर्च कर डालें। मगर नये अंग्रेज़ शासकों ने यह किया। ''सन् 1857 में एजुकेशन सेस से प्राप्त आय ₹1,14,562 थी जिसमें से केवल ₹23,472 ग्रामीण विद्यालयों पर खर्च हुए। सीमा प्रांत में एक गाँव में टैक्स दिए जाने के बाद एक स्कूल की माँग की गई, जो अस्वीकार किए जाने पर वहाँ गुस्सा भड़क गया, जिसे दबाने के लिए सैनिकों को भेजा गया।'' (*इंट्रोडक्शन*, पृ. iii) यह शिकायत लीटनर को कई स्थानों से मिली कि टैक्स देने के बाद भी वहाँ स्कूल नहीं खोले गए। इससे ग्रामीण जनता में नयी सरकार के प्रति विश्वास को बड़ी चोट पहुँची। लीटनर ने सिफ़ारिश की कि सरकार को इसे फिर से वापस पाने के लिए कदम उठाने चाहिए।

पंजाब के व्यापारी वर्ग के महत्वाकांक्षी लोगों ने शासकीय शिक्षा व्यवस्था को खुशी-खुशी स्वीकार किया। इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ने की संभावना साफ़ दिख रही थी। फिर शासकीय सेवा में नौकरी पाकर लोगों पर, उन उच्च वर्ण के लोगों पर शासन करने का अवसर खुल रहा था, जो अब तक इन्हें नीची नज़र से देखते थे। लीटनर के अनुसार, समाज के नैतिक और शैक्षिक दायित्व का भार भी इन 'निम्न वर्गीय' हिंदुओं पर इतना नहीं था जितना 'उच्च वर्गीय' हिंदुओं पर। मगर मुख्य बात यह थी कि शासकीय शिक्षा प्रणाली को अपनाकर सत्ताधारियों का अंग बन कर एक नयी उच्च जाति बनने की प्रेरणा इतनी आकर्षक थी कि जिसे ठुकराना कठिन था। साथ ही शिक्षक पद से मुसलमानों को भी हटाने की भावना उतनी ही तीव्र थी, क्योंकि अभी तक पूरे प्रांत में मुसलमान ही शैक्षिक रूप से अग्रणी थे। इस प्रकार, कम सम्मानित तथा कम अनुदार वर्गों ने उर्दू को शिक्षा का माध्यम बनाने का स्वागत कया, जिससे सत्ता से मिलने वाले

लोभ–लालच सीधे जुड़े हुए थे। इसीलिए जब और ऊँचे पदों के लिए अंग्रेज़ी मुख्य मार्ग बनी, तब इन निचले वर्गों के लोगों ने ही उत्साह से इसका स्वागत किया, क्योंकि यह राजनीतिक सत्ता में हिस्सा पाकर जनता में ब्राह्मणों को बौद्धिक नेतृत्व से हटाने का आसान मार्ग था।

इस तरह, अंग्रेज़ों ने पहले पारंपरिक शिक्षा का विघटन किया जिसमें धर्म–आचार का प्रमुख स्थान था। समाज के सम्मानित ज्ञानियों को सरकार की शिक्षा समितियों में स्थान नहीं दिया। फिर अब सामाजिक उथल–पुथल (Social Bouleversement) करके, उन्नति पाने का ऐसा मार्ग खोला गया जिसमें सरकार के समक्ष किसी की जन्मगत, पारंपरिक प्रतिष्ठा के साथ–साथ ज्ञान, चरित्र, साहस आदि गुणों का भी कोई महत्त्व नहीं रहा! वह सरकार जो जनता के लिए भगवान के बाद सर्वशक्तिमान थी, सरकार ने उन गुणों को महत्त्व देने के बदले अधिक व्यावहारिक उपाय किया। भारतीयों के बीच के उन नये महत्वाकांक्षी तत्वों को साथ लेकर शासन चलाने की नीति अपनाई, जो आधिकारिक सत्ता का उपभोग करना चाहते थे।

यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि लीटनर ने यह रिपोर्ट 1882 में लिखी थी, जब 1857 के विद्रोह को अधिक समय नहीं बीता था। नयी अंग्रेज़ी सत्ता द्वारा पारंपरिक भारतीय शिक्षा, फ़ारसी–संस्कृत के ज्ञान–भंडार तथा वास्तविक ज्ञानियों, शिक्षकों तथा प्रतिष्ठित चरित्रवान लोगों को उपेक्षित करने की उनकी आलोचना को इसी रूप में लेना चाहिए कि लीटनर इसे अंग्रेज़ी राज के हित में नहीं देख रहे थे। एक उदारवादी विद्वान के रूप में उन्हें महसूस हुआ कि किसी समाज को जीतने का उपाय, वहाँ के सर्वश्रेष्ठ लोगों को शासकीय योजनाओं तथा कार्यों में शामिल करना है। इससे समाज का सच्चा विकास होगा और लोग सरकार को पसंद करेंगे। न कि स्वार्थी तत्वों को साथ लेकर सरकार चलाना। मगर जैसा कि इतिहास ने दिखाया, उर्दू और अंग्रेज़ी द्वारा स्वार्थी किस्म की शिक्षा चलाकर और भारतवासियों के बीच एक अनुचर वर्ग का निमार्ण करके अंग्रज़ी सत्ता को लाभ ही हुआ। पारंपरिक भारतीयता शिक्षा को ध्वस्त करके उन्होंने वास्तव में भारतीय समाज का नैतिक विघटन भी किया, जिससे भारतवासी लंबे समय तक निर्बल हो गए और यूरोपियनों का अनुकरण करके अंग्रेज़ी–शिक्षित भारतीय अपने देशवासियों से अलग होकर उन पर स्वार्थी भाव से काबिज हो गए। यह अब तक चल रहा है। इसलिए लीटनर की आलोचना को तात्कालिक संदर्भ में तथा उनके अपने उदारवादी रुख के साथ देखना चाहिए। हमारे लिए, अभी इन सब तथ्यों का मुख्य संदर्भ डेढ़ सौ वर्ष पहले भारत की अपनी शिक्षा–व्यवस्था के बारे में जानना भर है।

बहरहाल, व्यापारी वर्ग के सामान्य लोग तो तब भी अपने पारंपरिक पांढा *(Pandhas)* से शिक्षा प्राप्त करते रहे। साथ ही वे शासकीय एवं ईसाई मिशनरी स्कूलों में भी जाते थे। पांढा उन्हें मुख्यतः मौखिक गणित, सरल गणित तथा नागरी लिपि का संक्षिप्त रूप लान्द (पूँछ–हीन, Lunde, या Lande) सिखाते थे, जो वाणिज्य लिखाई कहलाती थी। लीटनर के अनुसार, हर तरह की वाणिज्यिक लिखाई चाहे वह 'लान्द', 'लुन्द' 'सराफी' या 'महाजनी' आदि जो भी कहलाती हो, मुख्यतः एक ही है और नागरी लिपि से ही बनी है, जिसे उन लोगों ने व्यावहारिक रूप से अधिक

तेज़ी से लिखने लायक (Tachygraphic) बनाया ताकि फ़ारसी की तरह ज़ल्द लिखने का उपाय हो जाए।

लीटनर के अनुसार, ''दबे हुए और नापसंद किए जाने वाले व्यापारी वर्ग के बीच हमें कुछ लोकप्रियता मिली।'' इन्हीं लोगों ने शासकीय स्कूलों का लाभ उठाया। जबकि जिसके टैक्स से वे स्कूल बने थे, उस कृषक समाज में 'रोटी माँगने पर पत्थर दिए गए।' अंतत: यह स्थिति आ गई कि मध्य और उच्च-शिक्षा प्राप्त करने वालों में नब्बे प्रतिशत लोग उस नए वैकल्पिक समाज *(nouvelles souches social)* से ही थे, जो पारंपरिक सम्मानित भारतीयों के विपरीत अंग्रेज़ों के साथ मिलकर अपनी ताकत और प्रतिष्ठा बढ़ाने का अवसर देख रहे थे। पारंपरिक कुलीनों का प्रभाव लुप्त हो गया। इस बीच ग्रामीण धनियों, रईसों और अच्छे किसानों ने संपत्ति और अभिमान के चलते या तो शिक्षा को पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया, या निजि शिक्षक रखकर अपने बेटों की शिक्षा का प्रबंध किया। वे नये हालात से निराश थे। हालाँकि उन्हें सरकार पर भरोसा था और वे अपने बच्चों को शासकीय स्कूलों में भेजने के लिए तैयार थे, बशर्ते उनके ऊँचे सामाजिक स्तर का ध्यान रखते हुए वहाँ व्यवस्था हो। उदाहरण के लिए, इसी दृष्टि से उन्होंने लार्ड कैनिंग से लाहौर में ऐसे कॉलेज की माँग की जो केवल उनके बच्चों के लिए सुरक्षित हो। तदनुरूप लाहौर जिला स्कूल के संबंध में एक विशेष विभाग बनाया भी गया, इंग्लैंड के पुराने विश्वविद्यालयों की तर्ज़ पर, जहाँ उच्चवर्गीय कुलीनों (patricians) और दूसरे विद्यार्थियों के बीच अंतर का ध्यान रखा जाता था। लेकिन जब 1864 में गवर्मेंट कॉलेज, लाहौर की स्थापना हुई तो विद्यार्थियों में कुलीनों और सामान्य लोगों का भेद समाप्त कर दिया गया। रईसों ने इस आधिकारिक सत्य को स्वीकार कर लिया, कि शिक्षा में कोई जन्मगत भेद न हो, मगर नीची जातियों के साथ संसर्ग न रखने की इच्छा से उनमें से अधिकांश ने अपने बच्चों को कॉलेज से हटा लिया।

कुल मिलाकर, जब नवंबर 1864 में डॉ. लीटनर लाहौर पहुँचे, तब उन्होंने यह स्थिति पाई थी। लीटनर उस नव-स्थापित गवर्मेंट कॉलेज के प्रिंसिपल बनकर आए थे। उन्होंने महसूस किया कि शासन से उच्च-वर्गीय भारतीय अलग-थलग थे, चाहे उनमें कोई विद्रोह की भावना दिखाई नहीं देती थी। इस बीच सरकार के शिक्षा विभाग ने, कुछ तो नासमझी में, कुछ अपने संकीर्ण हित में, लोगों की शिक्षा संबंधी आकांक्षाओं को उपेक्षित किया। इसीलिए सरकार द्वारा उन्हें देशी शिक्षा की स्थिति का पूरा आकलन करने का जो निर्देश 1854 में ही मिला था, उस पर प्राय: कुछ नहीं हुआ। वैसे भी शिक्षा विभाग सरकार के दूसरे विभागों जैसे चुस्त, प्रशासनिक अंग के रूप में कार्य नहीं करता था। लीटनर के आकलन में यह कुल मिलाकर सरकार के हित में नहीं था, क्योकि इससे लोगों में सरकार के प्रति उदासीनता ही पैदा हो रही थी। लीटनर यह भी कहते हैं कि शिक्षा विभाग की इस प्रवृत्ति ने प्राचीन सभ्यता वाले इस देश का सहज, आंतरिक विकास बाधित किया। क्योंकि उसकी अपनी शिक्षा व्यवस्था ध्वस्त होने के कगार पर थी, जबकि नयी शासकीय व्यवस्था न तो पर्याप्त थी और न उसमें गुणवत्ता थी।

जो नयी अंग्रेज़ी शिक्षा दी जा रही थी, उसमें मुख्यत: गणित तथा मामूली अंग्रेज़ लेखकों की

कुछ साहित्यिक या ललित रचनाएँ थीं। जैसे, डॉ. डिक्शन का 'लाइफ ऑफ बेकन', प्रेसकॉट की 'एसे ऑन शतोब्रियाँज, एसे ऑन मिल्टन', कैम्पबेल का 'रेटरिक', रोजर का 'इटली'- यह सब उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अंग्रेज़ी साहित्य का पाठ्यक्रम था। दर्शन में अबेरक्रॉम्बी तथा इतिहास में यहूदियों, रोम और ग्रीस के इतिहास की कुछ बातें–बस इतना पर्याप्त समझा गया। प्राथमिक शिक्षा की सामग्री का हाल यह था कि एक नक्शे में सहारा को स्पेन के बीच गुज़रते दिखाया गया था जो दिखाता था कि पाठ्य–सामग्री योग्य लोगों ने नहीं बनाई है। 1874 की पार्लियामेंटरी रिपोर्ट के अनुसार, भारत में नयी अंग्रेज़ी शिक्षा ने विद्यार्थियों को सुसंस्कृत नहीं बनाया है, जो शिक्षा की एक सर्वोच्च पहचान है। (वही, पृ. vii) रिपोर्ट ने यह तत्व उन लोगों में पाया जिन्होंने फ़ारसी और संस्कृत की शिक्षा पाई है। उनमें सुरुचिपूर्ण संस्कार के साथ बौद्धिक क्षमता से जुड़ी आदतें देखी जाती हैं। जबकि अंग्रेज़ी शिक्षा पाए प्राप्त लोग जैसे–तैसे कुछ रटी हुई जानकारियाँ ही दुहरा सकते हैं।

यही बात पंजाब के लेफ़्टिनेंट गवर्नर की रिपोर्ट (Proceedings, No.606, 18 February 1873) में भी मिलती है, कि पंजाब में अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य अच्छी तरह नहीं पढ़ाया जाता। उससे न विद्वान बन रहे हैं, न भद्र–सुसंस्कृत लोग। शिष्टाचार शिक्षा भी उपेक्षित रही है। ''यदि शिक्षा का नतीजा यह हो कि वहाँ से आकर युवक अहंकारी, उद्धत और अशिष्ट वाचाल दिखें तो आश्चर्य क्या कि माता–पिता घर में ही बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। अंग्रेज़ी शिक्षा पाए हुए युवक बस जैस–तैसे अंग्रेज़ी लिख, बोल लेते हैं। अंग्रेज़ी साहित्य से उनकी पहचान बड़ी छिछली तथा इतिहास का ज्ञान अहंकारपूर्ण है।'' (वही, पृ. viii) रोचक बात यह है कि यह सब लिखकर आगे इस रिपोर्ट ने यहाँ अंग्रेज़ी शिक्षा से जिन गुणों के उभरने, विकसित होने की अपेक्षा की थी–उदात्तता, भद्रता, विनम्रता और विवेक–वह आज तक अंग्रेज़ी शिक्षित भारतीयों में यथावत् उपेक्षित ही रह गई है।

रिपोर्ट ने पाया था कि सच्ची ज्ञान–भावना और रुचि यहाँ की पारंपरिक शिक्षा के पास ही है। लकड़ी, कागज़, चमड़े, भोज–पत्र, ताड़–पत्र, पेड़ की छाल, आदि पर लिखी हुई पांडुलिपियों में ज्ञान का सौंदर्य और तफ़सीलों का विशद् ध्यान रखा गया है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है। ''एक हज़ार वर्ष पहले लिखे गए उनके पन्ने आज भी बिलकुल चमकते ताज़े लगते हैं, जो आज के रंगीन अंग्रेज़ी प्रकाशनों से अधिक सुंदर हैं। उनके बनाए चित्रों में व्यक्तियों, घटनाओं या दृश्य में वह सूक्ष्म प्रभावशीलता है जो हमारे आज के फोटोग्राफ या ड्राइंग–रूम पेंटिंगों में नहीं मिलती।'' (वही, पृ. viii) इसलिए रिपोर्ट पश्चिमी और पूरबी शिक्षा का संतुलित योग बनाने की सिफ़रिश करती है, क्योंकि 'दोनों को एक दूसरे से सीखना है'। इसने पारंपरिक शिक्षा को सरसरी तौर पर खारिज करने तथा नष्ट होने देने की प्रवृत्ति को अविवेकपूर्ण बताया। ले. गर्वनर की यह रिपोर्ट पारंपरिक भारतीय शिक्षा की उदात्तता, ज्ञान का आदर करने, उसके प्रति विनम्र श्रद्धा रखने तथा किसी भी बात को गहराई से जानने, हर तफसील का ध्यान रखने की प्रवृत्ति को बहुत मूल्यवान मानते हुए, इससे अंग्रेज़ी शिक्षा को जोड़ने की ताकीद करती है।

इस बीच पारंपरिक पंडितों-ज्ञानियों के बीच से कुछ हलचल भी हुई, जो ज्ञान को बचाने तथा विकसित करने का लक्ष्य रखती थी। डॉ. लीटनर ने भी इसमें प्रेरक भूमिका निभाई थी। उन्होंने 'अंजुमने पंजाब' नामक संस्था बनाई। इसका उद्देश्य था उपयोगी ज्ञान का प्रसार, साहित्यिक, वैज्ञानिक विषयों पर विचार-विमर्श, सामाजिक-राजनीतिक सुधारों पर खुली चर्चा, आदि। इसने सार्वजनिक पुस्तकालय और वाचनालय भी खोले। इसी संस्था के संस्कृत विभाग के प्रमुख तथा प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान पंडित राधाकृष्ण ने ब्रिटिश सरकार को एक पत्र लिखा। प्रिंस ऑफ वेल्स ने उसका नोटिस लिया। उससे 'प्राच्य-विद्या आंदोलन' (ओरिएंटल मूवमेंट) को बल मिला। इसके प्रमुख लक्ष्य थेः (1) पंजाब में एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना, जिसे भारतीय लोग स्वयं अपनी जरूरत के अनुसार चलाएँ। (2) क्लासिकल भारतीय भाषाओं, मुसलमानों के लिए अरबी तथा हिंदुओं के लिए संस्कृत का अध्ययन पुनर्जीवित किया जाए। (3) जनता के लिए यूरोपीय ज्ञान को सुलभ कराया जाए। (4) अंग्रेज़ी शिक्षा का स्तर उन्नत किया जाए। इस आंदोलन को समर्थन भी मिला। भारतीय तथा कई उच्च अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा भी।

इस बीच 1964 में 4 विद्यार्थियों से शुरू हुए लाहौर गवर्मेंट कॉलेज में 1972 में 60 विद्यार्थी हो गए। यह अंग्रेज़ी शिक्षा की बढ़ती माँग का संकेत था। वहाँ से निकले ग्रेजुएट सफल अधिकारी, कर्मचारी या प्रोफ़ेशनल बन रहे थे। जैसा बाद के इतिहास से लगता है कि पूरे भारत में अंग्रेज़ी स्कूल-कॉलेजों का प्रभाव उसी गति से बढ़ता गया। जैसे- पंजाब के विशाल क्षेत्र में लीटनर रिपोर्ट ने नोट किया, लगभग वही तथ्य कलकत्ता प्रेसिडेंसी में सन् 1835 और 1838 में आई डब्ल्यू. एडम की रिपोर्टों में भी मिलता है। एडम ने तब के बंगाल-बिहार-उड़ीसा के विशाल क्षेत्र में यही अध्ययन किया था। उसी दौर में बंबई प्रेसीडेंसी में भी यही तथ्य पाए गए थे। सभी रिपोर्टों में यह समान तथ्य उभर कर आता है कि संपूर्ण भारत की शिक्षा-व्यवस्था गंभीर, ज्ञान-पूर्ण, आत्म-निर्भर, राजसत्ता के हस्तक्षेप से पूर्णतः स्वतंत्र, गाँव-गाँव तक उपलब्ध तथा गुणवत्ता एवं गहराई में भी यूरोपियनों से कई मामलों में उन्नत थी। यह डेढ़ सौ साल पहले तक की स्थिति थी! किंतु, अंग्रेज़ों की सत्ता के प्रभाव, यहाँ के नवोदित उच्च-वर्ग के लोभ, भारतीयों की सामाजिक एकता में कमी तथा पारंपरिक ज्ञानियों की प्रतिष्ठा व हैसियत में तेज़ी से गिरावट आदि कई कारणों से पारंपरिक शिक्षा लगभग लुप्तप्राय हो गई।

इस प्रकार लीटनर ने रोचक और भावपूर्ण भाषा में डेढ़ सौ साल पहले की एक सत्य-कथा ही लिखी है। उनके ही शब्दों में यह 'एक यूरोपीय सभ्यता के एक एशियाई सभ्यता से संपर्क का इतिहास है', जिसमें 'पंजाब की शिक्षा लगभग नष्ट हो गई, कैसे उसके पुनर्जीवन के अवसर गँवा दिए गए और कैसे उस शिक्षा का विकास या तो उपेक्षित किया गया या उसे विकृत किया गया'। लीटनर ने इसके लिए किन्हीं व्यक्तियों के बदले अपनी व्यवस्था को दोषी बताया है जो नये अंग्रेज़ शासन ने बनाई थी। जो लोग दो सौ वर्ष पहले के भारत को यूरोपियनों से पिछड़ा मानते हैं तथा भारत में अंग्रेज़ी राज को आधुनिक विकास और उन्नति का कारण मानते हैं, उनके लिए यह रिपोर्ट आँख खोलने वाली है।

संदर्भ

1. लेखक को यह रिपोर्ट चंडीगढ़ के श्री सुरेंद्र बंसल जी के सौजन्य से प्राप्त हुई। वे एक अच्छे लेखक, परिश्रमी संपादक, पर्यावरण-रक्षक तथा शिक्षा-सेवी हैं।
2. ये डिवीज़न थे- ***दिल्ली*** (इसमें जिले थे- दिल्ली, गुड़गाँव, करनाल); ***हिसार*** (हिसार, रोहतक, सिरसा); ***अंबाला*** (अंबाला, लुधियाना, शिमला); ***जालंधर*** (जालंधर, होशियारपुर, कांगड़ा); ***मुलतान*** (मुलतान, झाँग, मुजफ्फरगढ़, मोंटगोमरी); ***अमृतसर*** (अमृतसर, गुरदासपुर, सियालकोट); ***लाहौर*** (लाहौर, गुजराँवाला, फिरोजपुर); ***रावलपिंडी*** (रावलपिंडी, झेलम, गुजरात, शाहपुर); ***डेराजात*** (डेरा गाजी खान बन्नू, डेरा इस्माइल खान) तथा ***पेशावर*** (हज़ारा, कोहाट)।
3. विस्तार से तत्कालीन भारत की शिक्षा व्यवस्था के बारे में जानने के लिए देखें, धर्मपाल, *रमणीय वृक्ष*, 'धर्मपाल- समग्र लेखन' खंड-4 तथा 18वीं शताब्दी में भारत में विज्ञान एवं तंत्रज्ञान, 'धर्मपाल: समग्र लेखन', खंड-2 (अहमदाबाद- पुनरुत्थान ट्रस्ट, 2007)
4. जी. डब्ल्यू. लीटनर. *हिस्ट्री ऑफ़ इंडीजीनस एजुकेशन इन पंजाब सिन्स एनेक्सेशन एंड इन 1882*. पहली बार 1883 में प्रकाशित। पटियाला स्थित लेंग्वेज डिपार्टमेंट, पंजाब द्वारा 1971 में पुनर्प्रकाशित। पुस्तक 'इंट्रोडक्शन' तथा 'हिस्ट्री ऑफ़ इंडीजीनस इन द पंजाब' के अलावा पाँच भागों में विभक्त है। इसके बाद अंत में सात परिशिष्ट भी हैं। हालाँकि वास्तव में 1971 वाले पुनर्प्रकाशन में चार परिशिष्ट (ii से v) छूट गए हैं। इन सभी हिस्सों में अलग-अलग, पृ. 1 से पृष्ठ संख्या दी गई है। इसलिए संबंधित खंड के शीर्षक के साथ उसकी अपनी पृष्ठ संख्या दी जा रही है। *'इंट्रोडक्शन'* तथा *'हिस्ट्री ऑफ़ इंडीजीनस इन द पंजाब'* वाले आरंभिक दो अध्याय में पृष्ठ संख्या छोटे रोमन अंकों में दी गई है। इसीलिए, यहाँ संदर्भ है- 'इंट्रोडक्शन', पृ. ii